इकाई 5 वैदिककालीन भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- वैदिक काल की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अवस्था से अवगत हो सकेंगे।
- वैदिक काल के अनन्तर विभिन्न परिदृश्यों में आये परिवर्तनों को समझ सकेंगे।
- वैदिक काल के आधार पर चिन्तन कर वर्तमान स्थिति की तुलना कर सकेंगे।
- वैदिक काल के विविध विषयी धरातलों पर अपना पक्ष प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

वैदिककालीन भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सामग्री **वैदिक साहित्य** में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। वैदिककालीन भूगोल में जहाँ उस समय **समुद्र** था, वहाँ आज **मरुस्थल** तथा **जनसंचार** है। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था **वर्णाश्रम** नियमों में आबद्ध थी। अर्थ का आधार मुख्य रूप से **कृषिकर्म** तथा **पशुपालन** था। राजनीतिक व्यवस्था जनसमूह के कल्याण की दृष्टि से संचालित थी। उसका मुख्य कार्य जनसमूह की सुविधाओं का विकास एवं उन्नयन था। प्रस्तुत इकाई में आप वैदिककालीन भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन के विषय में अध्ययन करेंगे।

5.2 वैदिककालीन भौगोलिक जीवन

वैदिक संहिताओं तथा ब्राह्मणों में उद्धृत नदियों, पर्वतों, वनों आदि के नामोल्लेख से तत्कालीन भौगोलिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। प्राकृतिक परिवर्तनों के कारण भी तत्कालीन नदियों, पर्वतों आदि की वास्तविक स्थिति भी अधिकांश रूप में परिवर्तित हो गई है। एक नदी जहाँ उस काल में बहती थी उसका प्रवाह मूल स्थान से हटकर अत्यधिक दूर चला गया है। ऐसी स्थिति में वर्तमान नदियों, पर्वतों आदि की स्थिति के आधार पर उनकी सही स्थिति का अनुमान लगाना कठिन कार्य है। यहाँ **संहिताओं** तथा **ब्राह्मण ग्रन्थों** में उपलब्ध सन्दर्भों के आलोक में संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है –

5.2.1 नदियाँ

ऋग्वेद (10.75) के **नदीसूक्त** के प्रथम मन्त्र में 42 नदियों की सत्ता का उल्लेख किया गया है– **सप्तसप्त त्रेधा**। किन्तु इस सूक्त के पाँचवें तथा छठें मन्त्र में नामशः केवल **19 नदियों** का ही उल्लेख है। प्रकृत का संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है –

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्णया।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये श्रृणुह्या सुषोमया।। ऋग्वेद (10.75.5)

1. **गङ्गा** – ऋग्वेद(10.75.5) के अतिरिक्त गङ्गा का अन्य मन्त्र में उल्लेख नहीं है। ऋग्वेद (6.45.3) में **उरुकक्ष** के विशेषण के रूप में **गांग्य** पद का प्रयोग किया गया है। शतपथ ब्राह्मण (13.5.4.11) में **भरत दौष्यन्ति** के यमुना और गंगा पर विजय का उल्लेख है। इससे ज्ञात है कि यहाँ तक भरतों अथवा कुरुओं के राज्य की सीमा थी। तैत्तिरीय आरण्यक (2.20) में गंगा तथा यमुना के मध्य रहने वाले लोगों की प्रशंसा की गई है।

2. **यमुना** – नदीसूक्त के अतिरिक्त ऋग्वेद में इस नदी का दो बार उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद (5.52.17) में **मरुतों** से यमुना के तट पर **गोधन** तथा **अश्वधन** प्राप्त करने का उल्लेख है। ऋग्वेद (7.18.19) में यमुना के तट पर अज, शिशु तथा यक्षुओं के साथ **सुदास के युद्ध** का वर्णन है। अथर्ववेद (4.9.10) में यमुना के **आंजन** का उल्लेख किया गया है। संभवतः इसी आंजन के कारण **यमुना का जल काला** माना गया है। शतपथ ब्राह्मण (13.5.4.11) तथा ऐतरेय ब्राह्मण (8.23) में यमुना पर **भरतों की विजय** का उल्लेख है। वैदिक साहित्य के कतिपय स्थलों में यमुना के तट पर **शाल्वों** के निवास का उल्लेख प्राप्त होता है।

3. **सरस्वती** – ऋग्वेद (2.41.16) में इसे नदियों में सर्वश्रेष्ठ (नदीतमा) तथा ऋग्वेद (7.36.6) में नदियों की माता **(सिन्धुमाता)** कहा गया है। वाजसनेयी संहिता (3.4. 11) में इसकी सहायक 5 नदियों का उल्लेख है। ऋग्वेद में सरस्वती के लिये एक स्वतन्त्र सूक्त (6.61) सम्बोधित है। वैदिक काल में यह **सरस्वत्** नामक समुद्र में जाकर मिलती थी, किन्तु पृथिवी पर एक अद्भुत प्राकृतिक स्थिति उत्पन्न होने के कारण उत्तरवैदिक काल में वह **सरस्वत्** समुद्र सूख गया और सरस्वती उसी रेगिस्तान में विलीन हो गई। जिस स्थान पर वह लुप्त हो गई उस स्थान का नाम पंचविंश बाह्मण (15.10.6) तथा जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (4.26) में **विनशन** बताया गया है।

4. **शुतुद्री** – ऋग्वेद (3.33) के सम्पूर्ण सूक्त में विपाट् और शुतुद्री के संगम पर भरतों के साथ विश्वामित्र के जाने और उन्हें पार करने के लिये उन नदियों से प्रार्थना करने का उल्लेख है। उत्तर वैदिक काल में इसका **शतद्रु** के नाम से उल्लेख है। आधुनिक नाम **सतलज** है। इसका मार्ग परिवर्तित होता रहा है।

5. **परुष्णी** – ऋग्वेद (7.18.8-9) में दश राजाओं के विरुद्ध सुदास के युद्ध के प्रसंग में इसका उल्लेख है। ऋग्वेद (8.74.15) में परुष्णी के लिये **महेनदि** सम्बोधन प्रयुक्त किया गया है। यहीं पर **श्रुतर्वा** नामक राजा ने अश्व का दान किया था। ऋग्वेद (4.22.2) तथा (5.42.9) में भी परुष्णी का उल्लेख है। सम्भवतः इसके तट पर भेड़ें अधिक पाली जाती रही हों इसलिये उसे ऐसा कहा गया है। यास्क ने इस नदी का उल्लेख **इरावती** के नाम से किया है। इरावती का ही विकृत नाम **रावी** है जो पंजाब (आधुनिक पाकिस्तान) की एक प्रसिद्ध नदी है।

6. **असिक्नी** – असिक्नी का अर्थ यास्क के अनुसार **काला** है (निरुक्त 9.26)। सम्भवतः इसका जल काला होने के कारण इसको इस नाम से सम्बोधित किया गया है। इसी नदी का आगे **चन्द्रभागा** के नाम से उल्लेख प्राप्त होता है जो और विकृत होकर **चेनाब** के नाम से आज प्रसिद्ध है। ऋग्वेद (8.20.25) में सिन्धु के साथ असिक्नी का उल्लेख है, जिससे होकर आने वाले मरुतों को **भेषजरूप** बताया गया है।

7. **मरुद्वृधा** – रॉथ के अनुसार मरुद्वृधा उस नदी का नाम है जो वितस्ता और परुष्णी के मिलकर बहने से बनती है। एक अन्य विद्वान् ने **मरुद्वृधा** को **मरुवर्ध्वन** माना है, जो कश्मीर की एक छोटी नदी है और उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है तथा **किस्तवाड़ के पास चेनाब** के उत्तर तट पर मिल जाती है।

8. **वितस्ता** – यास्क (निरुक्त 9.26) ने इस नदी का उल्लेख किया है। बिहट कश्मीरी में **बेठ** के नाम से प्रसिद्ध है। इसके दक्षिण तट पर स्थित **झेलम** नामक स्थान के आधार पर आज यह **झेलम** नदी के नाम से जानी जाती है।

9. **आर्जीकीया** – निरुक्त (9.26) के आधार पर **ऋजीक/आर्जीक** पर्वत से उत्पत्ति अथवा ऋजुगामिनी से यह नामकरण हुआ। इसका उल्लेख ऋग्वेद (8.7.29, 9.113.2) में भी प्राप्त होता है।

10. **सुषोमा** – ऋग्वेद (8.7.29, 8.64.11) में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। यह **सुषोम** पर्वत से निकलती है। इसका तादात्म्य **सोहान** नदी (सिन्धु की सहायक) से किया जा सकता है।

11. **सिन्धु** – ऋग्वेद (1.122.6, 4.54.6) एवं अथर्ववेद (3.13.1) के अनेक स्थलों पर इसका उल्लेख प्राप्त होता है। अन्य नदियों की अपेक्षा यह अधिक शक्तिमती एवं समृद्धिशालिनी थी। यह पश्चिम में **परावत** या **अपरा** (वर्तमान अरब सागर) में गिरती थी।

12. **तृष्टामा** – यह **सिन्धु** की प्रथम सहायक नदी है। यह आधुनिक **गिलगिट** ही है।

13. **सुसर्तु**– **द्रास** एवं **पक्षुभ** इसकी सहायक नदियाँ मानी जाती हैं। इसे **सुरु** अथवा **घोरवन्द** नाम से भी सम्बोधित किया जाता था।

14. **रसा** – वर्तमान नाम **शेबक**, यह कश्मीर की नदी है। **देवशुनी सरमा** के इस नदी को पार किये जाने का ऋग्वेद (10.108.1-2) में उल्लेख प्राप्त होता है। इसका सम्बन्ध **पंजशीर** नदी से भी किया जाता है।

15. **कुभा** – इसका सन्दर्भ ऋग्वेद (5.53.9) में प्राप्त होता है। साथ ही इसका सम्बन्ध **काबुल** नदी से भी माना जाता है। **कुनर** एवं **पंजकोरा** इसकी सहायक नदियाँ हैं।

16. **श्वेती** – इसका तादात्म्य काबुल की सहायक नदी **कुनर** से किया जाता है।

17. **कुमु** – इसका सम्बन्ध **कुरम** नदी से किया गया है, जो सिन्धु की सहायक नदी है।

18. **मेहत्नु** – सम्भवतः यह **कुमु** की सहायक नदी है। अधुना **सवान** नदी से इसकी पहचान की जा सकती है।

19. **गोमती** – यह **अफगानिस्तान** की नदी है। इसका सम्बन्ध आधुनिक **गोमाल** नदी से किया जाता है। तट पर गायों के रहने के कारण **गोमती** नामकरण हुआ माना जाता है।

20. **दृषद्वती** – सरस्वती की सहायक नदी, यह अधुना **घग्घर** अथवा **चितंग** हो सकती है। इसके तट पर **भरतों के यज्ञ** का उल्लेख ऋग्वेद (3.23.4) में प्राप्त होता है। यह **पथरीली नदी** वर्षावहा यदा कदा **सोदका** एवं **अनुदका** भी रहती थी।

21. **आपया** – ऋग्वेद (3.23.4) में इसका उल्लेख सरस्वती की सहायक नदी के रूप में प्राप्त होता है। यह **कुरुक्षेत्र** की नदी है।

22. **राका** – ऋग्वेद (5.52.12) में इसका सन्दर्भ प्राप्त होता है। यह सरस्वती की सहायक नदी थी। इसका सम्बन्ध **आधुनिक रावी** के साथ किया जाता है।

23. **बृहद्दिवा** – ऋग्वेद (5.42.12) में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। यह भी **सरस्वती की सहायक** नदी थी।

24. **विपाश्** – ऋग्वेद (3.33) में **विपाट्/विपाश्** का उल्लेख प्राप्त होता है। विश्वामित्र के पुत्रों द्वारा अपने पुत्र की मृत्यु से दुःखी होकर वसिष्ठ ने अपने को रस्सी से बाँधकर इसमें छलाँग लगाई थी, किन्तु प्रवाह तीव्र होने के कारण बन्धन टूट गये और वसिष्ठ बच गये।

25. **गौरी** – ऋग्वेद (1.164.41, 9.12.3) में इसका सन्दर्भ प्राप्त होता है। इसके तट पर **सोम के उगने** का भी उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है। यह **कुभा** वर्तमान काबुल नदी की सहायक है। इसका सम्बन्ध **पंजकोरा** से किया जाता है।

26. **सुवास्तु** – ऋग्वेद (8.19.37) में इसका सन्दर्भ प्राप्त होता है। यह **स्वात** के नाम से वर्तमान में ख्यात है। इसके तट पर **सफेद कम्बल** तथा **पाण्डु कम्बल** के उत्पादन का भी वर्णन विविध सन्दर्भों से प्राप्त होता है।

27. **अनितभा** – ऋग्वेद (5.53.9) में रसा तथा कुभा के साथ इसका उल्लेख प्राप्त होता है। इसका सम्बन्ध **अलिंगर** नदी से किया जा सकता है जो **काबुल** की सहायक नदी है।

28. **सरयु** – ऋग्वेद (4.3.18, 4.93.9, 10.64.9) में सन्दर्भ कुछ स्थलों पर प्राप्त होते है। वैदिक सरयु सिन्धु प्रदेश की नदी है। इस नाम की एक नदी अयोध्या के साथ बहती है दूसरी बलिया के पूर्व में गंगा में मिल जाती है। इसका विकृत नाम **सिरितोइ** भी है।

29. **सदानीरा** – शतपथ ब्राह्मण (1.4.1.14) के अनुसार यह कोशल तथा विदेह राज्यों की सीमा थी। इसका एकीकरण वर्तमान **गण्डकी** नदी से किया जा सकता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त ऋग्वेद में **शिफा, अंजासी, कुलिशी, विवाली, वितस्थाना, हरियूपिया, यव्यावती, प्रयियु, वयियु, श्वेतयाबरी, अंशुमती** तथा **अश्मन्वती** प्रभृति नदियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

5.2.2 समुद्र

ऋग्वेद में समुद्र के लिये **अर्णव** शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। विविध स्थलों पर नदियों के समुद्र में मिलने का उल्लेख प्राप्त होता हैं। अथर्ववेद (5.78.8) में समुद्र से **रत्न** प्राप्त होने का उल्लेख है। ऋग्वेद (9.33.6, 10.47.2, 10.136.5, 7.6.7) में चार समुद्रों **पूर्व, अपर, पर** एवं **अवर** का स्पष्टतया वर्णन है। **सरस्वत्** एवं **शर्यणावत्** का उल्लेख ऋग्वेद में (7.95.3, 7.64.11) तथा अन्य स्थलों पर बहुत्र प्राप्त होता है।

5.2.3 पर्वत

ऋग्वेद में सामान्यतया पर्वतों का उल्लेख अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है, जिससे तत्कालीन भौगोलिक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रसंग मे उल्लेखनीय प्रमुख पर्वत अधोलिखित हैं –

1. **हिमवन्त** – ऋग्वेद (10.121.4) तथा अन्य संहिताओं में हिमवन्त का विशेष रूप से उल्लेख है। यह पर्वत जिस प्रकार आज भारत की उत्तरी सीमा निर्धारित करता है और देश की रक्षा करता है उसी प्रकार वैदिक काल में भी वह **सप्त सिन्धु प्रदेश** की **उत्तरी सीमा** निर्धारित करता था। यह पर्वत ऊँचा होने के कारण सदा हिम से आच्छादित रहता है। यह अनेक नदियों का उद्गम-स्थल भी है।

2. **मूजवन्त** – ऋग्वेद तथा अन्य संहिताओं में इस पर्वत का उल्लेख है। ऋग्वेद (10.34.1) में **सोम** को **मूजवत्** पर्वत से उत्पन्न होने कारण **मौजवत** कहा गया है। अथर्ववेद में मूजवत् पर्वत को बहुत दूर बताया गया है और यह कामना की गई है कि रोगी का बुखार उसे छोड़कर मूजवत् पर चला जाये। यहाँ के रहने वाले लोगों को भी **मूजवन्त** कहा गया है। अथर्ववेद में मूजवतों का उल्लेख **महावृष, गन्धारि** तथा **वल्हीकों** के साथ किया गया है।

3. **त्रिककुद** – इस पर्वत से उत्पन्न **आंजन** का प्रयोग **सोमयाग में यजमान-दीक्षा** के अवसर पर किया जाता था। यतो हि इस **पर्वत से आंजन** निकलता था, अतः **आंजन का नाम ही त्रिककुद** पड़ गया था। अथर्ववेद (4.9.8) में स्पष्टतया पर्वतों में श्रेष्ठ **त्रिककुद** को **आंजन का पिता** कहा गया है। अथर्ववेद (4.9.6-10) में त्रिककुद से उत्पन्न आंजन को समस्त **यातुधानों को नष्ट करने वाला** तथा **देवांजन** कहा गया है। **त्रिककुद** नाम से ही यह प्रतीत होता है कि इस पर्वत की **तीन चोटियाँ** या पहाड़ियाँ थीं। यह वैदिक **यह्ववती** नदी के पूर्व में स्थित था। इस पर्वत का तादात्म्य अफगानिस्तान के दक्षिणी भाग में स्थित पहाड़ियों से किया जा सकता है जो सिन्धु के पश्चिम तट से उत्तर दक्षिण की ओर फैला हुआ है।

4. **शर्यणावत्** – शर्यणावत् नामक समुद्र जो सम्पूर्ण कश्मीर को अपने अन्दर लिये हुए था, उसके चारों ओर स्थित पर्वत की भी यही संज्ञा है। आज **कश्मीर घाटी के चारों ओर जो पहाड़ हैं** उन्हीं से इसका तादात्म्य किया जा सकता है।

5. **सुषोम** – इसका उल्लेख ऋग्वेद (8.7.29) में प्राप्त होता है। यहाँ से **सुषोमा नदी** निकलती है। इसलिये उस पर्वत को **सुषोम** कहा गया है। **सुषोमा** नदी **मूरी** की पहाड़ियों से निकलती है जो इस नाम के नगर के दक्षिण में है।

6. **आर्जीक** – इस पर्वत का उल्लेख ऋग्वेद (8.7.29, 9.113.2) में प्राप्त होता है। इसी पर्वत से **आर्जीकीया** नदी निकलती है। इसका तादात्म्य **मूरी के उत्तर** में स्थित पर्वत शृङ्खलाओं से किया जा सकता है।

   कौंच, महामेरु तथा **मैनाकादि** इन पर्वतों का उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यक में प्राप्त होता है।

5.2.4 अरण्य

ऋग्वेद तथा अन्य स्थलों में वनों का अनेकत्र उल्लेख है। ऋग्वेद (1.143.5) के एक मन्त्र में वर्णित है कि– **अग्नि वनों को उसी प्रकार साफ करता है जिस प्रकार कोई योद्धा अपने शत्रुओं को**। संहिताओं में प्राप्त सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि वैदिक आर्य जहाँ गाँवों एवं जनपदों में निवास करते थे, वहाँ से बाहर वन भी थे। वनों से ही यज्ञार्थ समिधायें तथा विविध प्रकार के काष्ठ प्राप्त होते थे। रात्रि के समय वनों में जब आग लगती थी, तत्समय अग्नि का प्रचण्ड रूप दिखाई पड़ता था। ऋग्वेद के **अरण्यानी सूक्त** (10.146) में आलंकारिक भाषा में अरण्य का वर्णन किया गया है। अरण्य से **आंजन, गन्ध, बिना कृषि के फल** आदि वस्तुयें प्राप्त होती थीं। ऋग्वेद (10.90.8) में **आरण्य** पशुओं का उल्लेख है। ऋग्वैदिक काल में सम्पूर्ण गंगा प्रदेश पूर्व समुद्र के रूप में जलमग्न था। पर्वतों से निकलकर बहने वाली नदियों के द्वारा लाई गई मिट्टी से धीरे-धीरे समुद्र भरता गया। कुछ समय तक तो वह स्थल **दलदली**

मिट्टी के रूप में रहा, किन्तु कालान्तर में वह भाग विभिन्न वनस्पतियों के स्वयं उत्पन्न होने के कारण **गहन अरण्य** बन गया। इन्हीं वनों एवं जंगलों को साफ कर आर्य-सभ्यता का धीरे-धीरे विस्तार होता रहा। पंचविंश ब्राह्मण (25.3.6) में **खाण्डव वन** के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। साथ ही तैत्तिरीय आरण्यक (5.1.1) में इसका उल्लेख **कुरुक्षेत्र की सीमा** के रूप में किया गया है।

5.2.5 धन्वन् (मरुस्थल)

ऋग्वेद (2.38.7, 3.45.1) तथा अथर्ववेद (5.13.1) में रेगिस्तान के लिये **धन्वन्** शब्द का बहुधा उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद (10.187.2) में रेगिस्तान के पार **परावत्** समुद्र से अग्नि के चमकने का उल्लेख है। ऋग्वेद (5.83.10) में **पर्जन्य द्वारा रेगिस्तान को पार** करने के योग्य बनाने का उल्लेख है। गर्मी के दिनों में रेगिस्तान चलने के योग्य नहीं होता। वर्षा में वह चलने के योग्य बन जाता है। ऐतरेय बाह्मण (2.19) में **रेगिस्तान में प्यास से** लोगों के मरने का उल्लेख है। रेगिस्तान में कहीं भी प्राप्त जल के स्रोत की महत्ता का उल्लेख ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के विविध मन्त्रों में प्राप्त होता है। ऋग्वेद (10.86.20) में कई योजन तक फैले रेगिस्तान का उल्लेख है।

5.2.6 देश

ऐतरेय ब्राह्मण (8.3) ने राजा के **महाभिषेक** के प्रसंग में इस आर्य मण्डल को **पाँच भागों** में विभक्त किया है। पूर्व के लोग तथा देश, दक्षिण, पश्चिम में नीच्य तथा अपाच्य (पश्चिम में रहने वाले लोग) था। उत्तर हिमालय से उस पार **उत्तर कुरु** और **उत्तर मद्र** संज्ञक जनपदों की स्थिति थी। सभी के मध्य प्रतिष्ठित मध्यम देश में कुरु पाँचालों का निवास था। प्राप्त सन्दर्भानुसार प्रमुख देश अधोलिखित हैं –

1. **मद्र** – यह वर्तमान पंजाब का ही एक छोटा भाग था। इसकी राजधानी **शाकल** थी, जो आजकल का **स्यालकोट** है। इसी मण्डल में यह देश था। हिमालय के उत्तर में (परेण हिमवन्तम्) **उत्तरमद्र** नामक जनपद का उल्लेख **उत्तर कुरु** के साथ ऐतरेय ब्राह्मण (8.3.14) में किया गया है।

2. **महावृष** – अथर्ववेद में **मूजवन्तों** के साथ इस देश का उल्लेख प्राप्त होता है जहाँ ज्वर को चले आने के लिए आग्रह है। छान्दोग्य उपनिषद (4.2.5) में लिखा है कि राजा जानश्रुति पौत्रायण ने महावृष देश में **ब्रह्मज्ञानी सयुग्वा रैक्व** को **रक्वपर्ण** नामक ग्राम दिया था।

3. **काशि या काश्य** – अथर्ववेद पैप्पलाद शाखा के अनुसार (5.22.14), शतपथ ब्राह्मण (13.5.4.19), बृहदारण्यक (2.1.1) में उल्लिखित काशी वर्तमान **काशी** ही है। ब्राह्मण युग में भी इसकी प्रख्याति कम न थी। **काशि** काशी के निवासियों के लिए तथा **काश्य** यहाँ के राजा के लिए प्रयुक्त होता था। शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि काशी नरेश **धृतराष्ट्र को शतानीक सात्राजीत ने युद्ध** में हराया था। बृहदारण्यक (3.8.2) में **अजातशत्रु** काशी के राजा बताये गये हैं।

4. **कोसल** – इस देश का नाम शतपथ ब्राह्मण (1.4.1.16) तथा जैमिनीय ब्राह्मण में प्राप्त होता है। कोसलों का नाम विदेहों के साथ प्राप्त होता है जिससे ज्ञात होता है कि पीछे के समय के अनुसार वैदिक काल में भी यह आस-पास निवास करते थे।

5. **विदेह** – शतपथ ब्राह्मण (1.4.10) में **विदेह** नाम से भी इसी देश का निर्देश किया गया है। यह वही देश है जो आजकल बिहार में **तिरहुत** के नाम से विख्यात है। कोसल तथा विदेह की सीमा पर **सदानीरा** थी, जो सम्भवतः आजकल की **गण्डकी** नदी है।

6. **मगध** – अथर्ववेद (5.22.14) में अंग के साथ मगध में **ज्वर के चले जाने** की प्रार्थना प्राप्त होती हैं। यजुर्वेद (30.22) के **पुरुषमेध** के अवसर पर **मगध की बलि अतिकुष्ट** के लिये बतायी गयी है। वैदिक काल में मगध के निवासी सभ्यता तथा धर्म की दृष्टि से नितान्त हीन समझे जाते थे।

7. **अंग** – अथर्ववेद (5.22.14) में **मगध के साथ** इस देश का नामोल्लेख प्राप्त होता है। **भागलपुर** के आस-पास का प्रदेश आधुनिक काल में **अंग** देश का ज्ञापक है।

8. **अन्य** – चेदि (बुन्देलखण्ड) नैषध, विदर्भ, मत्स्य, आन्ध्र मद्रास के उत्तर में पुण्ड्र बिहार के दक्षिण भाग, काम्पिल, कुरुक्षेत्र, तूर्ध्न, त्रिप्लक्ष आदि देशों के सन्दर्भ भी इतस्ततः वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं।

5.3 वैदिककालीन सामाजिक जीवन

वेद काल में पिता **समाज में प्रधान** होता था। वह अपनी उभयविध सन्तति का ध्यान रखता था। बालकों को शिक्षित करने के साथ ही बालिकाओं को ललित कला की शिक्षा देकर सुयोग्य गृहिणी बनाता था। उपनयन के अनन्तर वेदाध्ययन की प्रथा थी। संतत्यर्थ प्रत्येक मनुष्य देवाराधना करता था। पुरुष सूक्त के 10वें मन्त्र में **चारों वर्णों की उत्पत्ति** का उल्लेख प्राप्त होता है। प्राचीन सरल याग स्थायी अनुष्ठानों का रूप लेने लगे परिणामतः ब्राह्मणों का स्वतन्त्र वर्ण ही पृथक् हो गया। **सामरिक आवश्यकता** के कारण **क्षत्रिय वंशानुगत** हो गये। **कृषि प्रधान वैश्य** भी शनैः-शनैः वंशानुगत हो गये।

5.3.1 विवाह परम्परा

वैदिक आर्य संग्राम प्रिय थे अतः सर्वदा शौर्य प्राकट्य हेतु उद्यत रहते थे। अतएव वीर पुत्रों की कामना करते थे–**यथाऽहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा** (अथर्ववेद 1.29. 5)। **अभ्रातृका कन्या से विवाह न्यूनातिन्यून होता था** (ऋग्वेद 3.31.1)। स्वयंवर की व्यवस्था प्रायशः क्षत्रिय कन्याओं के क्रम में व्याप्त थी। शतपथ ब्राह्मण (4.1.5.9) में कन्या द्वारा **यावज्जीव पातिव्रत्य** प्रण का वर्णन है। माता-पिता की इच्छा से ही कन्या का विवाह होता था, यथा–**श्यावाश्व के समक्ष रथवीति ने ऋषि होने पर ही कन्यादान की स्वीकृति दी,** का वर्णन है (बृहद्देवता 5.50-80)। ऋग्वेद (10.85) में तत्समय के विवाह की भावना का वर्णन है –

> **सोमो वधूयुरभवदश्विना ता उभा वरा।**
> **सूर्यां यत् पत्ये शंसन्ती मनसा सविता ददात्।।**

सामान्यतः एक विवाह की प्रथा थी परन्तु बहुविवाह भी होता था (**ऋग्वेद** 1.71.1)। राजा की चार प्रकार की पत्नियाँ होती थीं–**महिषी** (यह क्षत्रिया एवं पटरानी होती थी, शतपथ ब्राह्मण 6.5.3.1), **परिवृक्ता** (पुत्रहीन पत्नी, अथर्ववेद 7.113.2), **वावाता** (राजा की प्रियतमा, ऐतेरेय ब्राह्मण 12.11), **पालागली** (राजदरबार के पदाधिकारी की कन्या,

शतपथ ब्राह्मण 13.4.1.8)। ब्राह्मणों में भी **बहुविवाह** का प्रचलन था, यथा **च्यवन, सौभरि एवं याज्ञवल्क्य** का प्रसंग दृष्टिगोचर होता है।

5.3.2 नारी

वैदिक युग में नारी **दुहिता**, **पत्नी** एवं **माता** के रूप में सम्मानित थी। समस्त धार्मिक कृत्य **नारी के संग** से ही सम्पादित होते थे। **अपत्नीक** को यज्ञाधिकार **अप्राप्त** था **(तैत्तिरीय ब्राह्मण 2.2.2.6)**। नारी का अपने पति के ऊपर पूर्ण प्रभुत्व भी था। इन्हें विविध प्रकार की कलाओं से सुशिक्षित किया जाता था। **नारियों** के द्वारा मन्त्र दर्शन का उल्लेख भी हमें ऋग्वेद के अनुशीलन से प्राप्त होता है, यथा–**लोपामुद्रा, अपाला (ऋग्वेद 10.91), घोषा, रोमशा, सूर्या ऋषिकायें।**

उपनिषद् काल में नारी का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। समाज में उच्च स्तर की कन्याओं में उपनयन का प्रचलन था –**पुराकल्पे तु नारीणां मौंजीबन्धनमिष्यते।** तदनन्तर सुव्यवस्थित शिक्षण कराया जाता था। महिला छात्राओं में दो प्रकार प्रचलित थे –

क) **सद्योद्वाहा** – इस प्रकार की स्त्रियाँ **ब्रह्मचर्य के अनन्तर गृहस्थाश्रम** में जाकर मातृत्व को प्राप्त करती थीं।

ख) **ब्रह्मवादिनी** – **ब्रह्मचिन्तन** में अपना तपोनिष्ठ जीवन व्यतीत करती थीं, यथा बृहदारण्यकोपनिषद् में वर्ण्य याज्ञवल्क्य की स्त्रियाँ।

5.3.3 समाज

वैदिक आर्यों का अधिकांश जीवन **ग्राम्य** था किन्तु **नागर** जीवन के भी प्रमाण प्राप्त होते हैं। रथ्या (सड़कों) के द्वारा एक स्थान दूसरे से स्थानों जुड़े थे। समाज में **कृषिकर्म** एवं **पशुपालन** अधिक था। प्रतिदिन प्रातःकाल गायों को **गोशाला (गोष्ठ)** से चरागाह **गोपाल** के संरक्षण में भेजा जाता था। गायों के दोहन का कार्य **गृहपति की पुत्री** करती थी। अतएव **दुहिता** पद का प्रयोग तदर्थ दृष्टिगोचर होता है।

5.3.4 आवास

वैदिक युग में आर्य **ग्राम्य, नागर** आदि जीवन व्यतीत करते थे। क्रमशः अधोलिखित के बारे में जानते हैं –

1. **दुर्ग** – वैदिक काल में **पुर** शब्द से **किला का ग्रहण** किया जाता है। जिसका प्रयोग अपने निवास-स्थान को **शत्रुओं से रक्षण** हेतु किया जाता था। ये बहुत विशाल हुआ करते थे। किले **पत्थर** के बनाये जाते थे (ऋग्वेद 4.30.20)। **लोहे** के बने किलों को **इन्द्र** द्वारा ध्वस्त किये जाने का उल्लेख ऋग्वेद (2.20.8) में प्राप्त होता है। सौ दीवाल **(शतभुज)** युक्त किलों का भी निर्देश ऋग्वेद (1.166. 8) में प्राप्त होता है।

2. **पुर** – वैदिक साहित्य में त्रिपुर तथा पुर उभयविध शब्द प्राप्त होते हैं परन्तु अर्थ का पार्थक्य प्रतीत होता है, यथा –**त्रिपुर** से तात्पर्य ऐसे नगर से जहाँ किलाबन्दी की तीन पंक्तियाँ बनायी गयी हों। इस युग में आर्य **काम्पिल, आसन्दीवन्त** तथा **कौशाम्बी** नगरियों से अवगत हो गये थे। बड़े नगरों में 4, 8, 12 अथवा चार के द्वारा विभाज्य संख्या वाले मुख्य द्वार होते थे जो एक दूसरे से सड़कों द्वारा मिले

रहते थे। इन चारों नगरद्वारों के एकत्र मिलने का स्थान चतुष्पथ **चौक** कहलाता था। राजा अपने राजकर्म सहायक वीरों एवं पत्नियों के लिए उपयुक्त बड़े-बड़े मकानों को बनाकर सुसज्जित किया करते थे। राजा के लिए अपना विशिष्ट महल होता था जो अनेक खम्भों से युक्त हुआ करता था। राजा **वरुण** का महल **सहस्रस्थूण** से परिपूर्ण था। साथ ही **सहस्र द्वार** भी उसमें थे। इस प्रकार के विशाल महलों के निमित्त **हर्म्य** पद का प्रयोग होता था। **हर्म्य** की अट्टालिका से राजा प्रजा को दर्शन देता था (ऋग्वेद 7.56.16)।

3. **वैदिक ग्राम** – यह आवश्यक समस्त सामग्रियों से परिपूर्ण होता था। ग्राम्यवासी स्वावलम्बी होते थे। ग्रामों में **पशुपालन** किया जाता था। **रुई** भी पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होती थी। स्त्रियाँ **सूत से वस्त्र** बुनकर अपनी सन्तति को पहनाती थीं। **कुम्हार, लोहार** प्रभृति सभी लोग दैनिक उपयोग की वस्तुओं का निर्माण करते थे। प्रत्येक ग्राम में **हजाम/वप्ता** (ऋग्वेद 10.42.4) होता था। **वैद्य** लोग रुग्ण की खोज किया करते थे। **संगीत** का भी प्रचार-प्रसार था।

4. **गृह** – वैदिक साहित्य में **आयतन** (चारों ओर दीवाल), **पस्त्या, वास्तु, हर्म्य, दुरोण** (द्वार युक्त) आदि पदों के प्रयोग गृह के अर्थ में ही प्राप्त होते हैं। निर्माण के आधार पर पृथक्-पृथक् संज्ञा प्राप्त होती थी। घरों में **आर्यों के कुटुम्ब तथा पालतू पशु** भी रहा करते थे। घर में बहुत से कक्ष होते थे। गृह निमाणार्थ बाँस, मिट्टी, लकड़ी पत्थर और पके हुए ईंट का प्रयोग होता था। अथर्ववेद (3.12, 9. 3) में गृहनिर्माण प्रक्रिया का उल्लेख प्राप्त होता है। सामान्यतया **बाँस एवं तृण** के प्रयोग से घर बनाया जाता था। लकड़ी के मकानों में खम्भों का प्रयोग बहुलतया होता था। घरों में **अग्निशाला, पत्नी सदन, हविर्धान, सदस्, अतिथिशाला** भी होते थे (अथर्ववेद 9.6.5)। घरों में तीन आँगन हुआ करते थे। गृहरक्षणार्थ **वास्तोष्पति** देवता से प्रार्थना का उल्लेख (ऋग्वेद 7.54) प्राप्त होता है। घर मापनार्थ सूत्र का प्रयोग होता था। बृहन्त एवं शाला शब्द का प्रयोग घर के आकार के आधार पर होता था। घरों में शिक्यों के छत पर लटकने का उल्लेख प्राप्त होता है। कोठे के अन्दर कोठरी का प्रयोग होता था। घर को दृढ करने के लिये नींव परिपक्व रखी जाती थी। घर को पर्याप्त अलंकृत किया जाता था।

5.3.5 गृह सामग्री

वैदिक युग में बैठने तथा लेटने के अनेक आसनों का वर्णन प्राप्त होता है, जो सामाजिक उन्नति के साथ-साथ सीधे-सादे से अलंकृत और परिष्कृत होते गये। यज्ञ के अवसर पर कुश निर्मित **प्रस्तर, बर्हि** तथा **कूर्च** का प्रयोग किया जाता था। **अश्वमेध** के अवसर पर **हिरण्यकशिपु** (सोने की चटाई) पर बैठने की परम्परा थी।

वैदिक काल में **तल्प** (वैवाहिक शय्या), **प्रोष्ठ** (हर्म्य में रखा जाने वाला) तथा **वह्य** (वहन करने योग्य) पर लेटकर आराम करने वाली स्त्रियों का उल्लेख किया गया है (अथर्ववेद 14.2.31)। **आसन्दी** का उल्लेख (वाजसनेयी संहिता 8.56) में प्राप्त होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इसका विशेषतया वर्णन है। **पर्यङ्क** इसका विस्तृत रूप प्रतीत होता है। शतपथ ब्राह्मण (5.4.4.1) में **राज्याभिषेक** के अवसर पर **आसन्दी के अंग प्रत्यङ्ग का** विशेष वर्णन प्राप्त होता है।

विविध प्रकार की वस्तुओं को रखने हेतु **कलश, द्रोण, स्थाली, दृषत्, उपल, उलूखल, मुसल, शूर्प, चषक** तथा **दृति** का उल्लेख बहुधा प्राप्त होता है। कलशों में **सोने और चाँदी** के सिक्के रखे जाते थे और उन्हें रक्षार्थ जमीन में गाड़ा जाता था, यथा **हिरण्यस्येव कलशं निखातम्** (ऋग्वेद 1.117.12)। तत्कालीन जीवन अत्यन्त सादगीपूर्ण था।

5.3.6 भोजन

वैदिक आर्यों का जीवन अत्यन्त सरल एवं सात्त्विक था। तत्समय **दूध** और **घी** की प्रचुरता थी। भोजन में **जौ की रोटी** तथा **भात** प्रमुख था। **जव** के आटा में दही मिला **करम्भ** तैयार कर **पूषन्** को समर्पण किया जाता था। **क्षीरोदन, दध्योदन, मुद्गोदन, दाल, मूंग** तथा **उड़द** का प्रयोग भोजन में होता था। **गोधूम** का प्रयोग भी कुत्रचित् स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है। **सक्तु** का दूध के साथ प्रयोग होता था। सोमरस दूध में मिलाकर प्रयोग किया जाता था। दधिमिश्रित सोमरस **दध्याशीर** कहलाता था। घी का बहुतायत में प्रयोग होता था। **नवनीत, आयुत, विलीन, आज्य, घृत** इत्यादि विशेषण घी की विविध स्थितियों के परिचायक थे। देवता के निमित्त घृत की आहुति **अग्नि** में समर्पित की जाती थी।

माँस भी शीत प्रदेशों में भोज्य होता था। हिमाच्छादित प्रदेशों में विषम ऋतु से रक्षणार्थ भोजन में यह प्रयोग किया जाता था (ऋग्वेद 1.64.10)। **फलों** का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है। जंगलों में स्वादिष्ट फलों के उगने का वर्णन प्राप्त होता है। ओषधियाँ स्वतः भी उग जाती थीं तथा कुछ को उगाया जाता था। आर्यों को **बेर** अत्यधिक प्रिय था। **बदर, कर्कन्धु** तथा **कुवल** इसी के अपर नाम हैं (वाजसनेयी संहिता 14.22)। **पिप्पल** के फल भक्षण का भी उल्लेख प्राप्त होता है (ऋग्वेद 16.164. 20)। **मधु** का प्रयोग देवार्पण एवं भोजन को मधुर बनाने हेतु किया जाता था। **इक्षु रस** का प्रयोग भी पर्याप्त होता था (ऋग्वेद 9.8.6.18)। **लवण** का सन्दर्भ अथर्ववेद (7.76.1) में भी प्राप्त होता है।

पेय पदार्थों में सोमरस प्रमुख था जो विभिन्न अवसरों पर पत्थरों द्वारा कूटा जाकर, छानकर देवार्पण के अनन्तर दूध अथवा अन्य पदार्थों के साथ मिलाकर ग्रहण किया जाता था। सोमपान से देवता प्रसन्न होते थे (ऋग्वेद 10.119)। सोमपान से **मानसिक उल्लास तथा शारीरिक स्फूर्ति** की उत्पत्ति होती थी। अतएव समराङ्ण में जाने से पूर्व आर्य सोमपान किया करते थे (ऋग्वेद 9.106.2)। सुरापान **मादकता उत्पन्न** करने के कारण **गर्हणीय** था। अतएव इसकी गणना **अनिष्टोत्पादक** वस्तु के रूप में की गई है (ऋग्वेद 7.86.6)।

5.3.7 वस्त्र एवं परिधान

वैदिक आर्यों के वस्त्र एवं परिधान **ऊनी, सूती, रेशमी** एवं **अजिन** एवं **कुश** निर्मित वस्त्र थे। अजिन **बकरों** एवं **हरिण** चर्म का होता था। ऐतरेय ब्राह्मण (1.1.3) के आधार पर दीक्षा में ग्रहणकर्ता को **कृष्णाजिन** धारण करने का नियम था। **सोमयाग** के अवसर पर यजमान-पत्नी को अधोवस्त्र के ऊपर कुश के बने वस्त्र पहनने का वर्णन प्राप्त होता है (शतपथ ब्राह्मण 5.2.1.8)। शीत अथवा हिमाच्छादित प्रदेशों में **ऊर्ण वस्त्र** पहनने का प्रचलन था (ऋग्वेद 5.52.9)। **गान्धार** का ऊर्ण सर्वत्र प्रसिद्ध था। **रेशमी** वस्त्रों का व्यवहार **यागानुष्ठान** के समय पर विशेषतः होता था। **केसरिया रंग** का रेशमी परिधान नितान्त पवित्र माना जाता था। प्रतिदिन के व्यवहार में सफेद सूती

धुले हुए वस्त्र पहने जाते थे (अथर्ववेद 18.4.31)। युवतियाँ रंगीन साड़ियाँ पहना करती थीं। **उषा** के वस्त्र निरीक्षण करने से यह अच्छे से पुष्ट होता है (ऋग्वेद 1.92.4)।

सामान्यतया दो प्रकार के वस्त्र प्रचलन में थे–**अधोवस्त्र** (धोती, साड़ी) एवं **अधिवास** (चादर दुपट्टा)। **नीविं करोति** वचन से धोती को बाँधने की परम्परा ज्ञात होती है। **कुर्ता** (प्रतिधि, द्रापि, अत्क) का भी प्रचलन था। नववधू के वस्त्रों में **प्रतिधि** सम्भवतः **चोली/कंचुकी** ही ज्ञात होती है (अथर्ववेद 14.1.8)। वरुण के द्वारा **हिरण्मय द्रापि** पहनने का उल्लेख प्राप्त होता है –**बिभद्र द्रापिं हिरण्ययं वरुणा** (ऋग्वेद 1.25.13)।

क) **पेशस्** – यह तत्कालीन मूल्यवान् वस्त्र था। इस पर सुनहले जरी का कार्य होता था। दम्पती सुनहले पेशस् को धारण करते थे (ऋग्वेद 8.31.8)। अश्विन् के **सफेद एवं काले पेशस्** धारण करने के उल्लेख प्राप्त होते है–**पेशो न शुकमसितं वसाते** (वाजसनेय संहिता 19.89)।

ख) **पगड़ी** – अवसरों के आधार पर वैदिक कालीन आर्य पृथक्-पृथक् प्रकार की **पगड़ी (उष्णीष)** धारण करते थे। यह **घर्मरक्षणार्थ** प्रयोग की जाती थी। कात्यायन श्रौतसूत्र (15.5.13,14) में **उष्णीष** को सिर पर लपेट कर दोनों ओर खोंस दिये जाते थे अथवा नाभि के पास ही खोंसे जाते थे।

ग) **जूता** – वैदिक काल में **शीत-घर्म** एवं **युद्ध में** रक्षणार्थ **पादत्राण** पहनने का उल्लेख प्राप्त होता है (ऋग्वेद 1.133.2)। **पत्सङ्गिणी** का उल्लेख शत्रु पर आक्रमण करने के अवसर पर धारणार्थ प्राप्त होता है (अथर्ववेद 5.21.10)। जूता **मृग** अथवा **शूकर के चर्म** से बनाया जाता था। **उपानह्** (जूता) शब्द का प्रयोग शतपथ ब्राह्मण (5.4.3.19) में प्राप्त होता है।

5.3.8 भूषण-सज्जा

ऋग्वेद (2.33.10) के सन्दर्भ तत्कालीन समाज में आभरण धारण की पुष्टि करते हैं। **निष्क** सुवर्ण से निर्मित था तथा **मुद्रा** के रूप में भी प्रचलित था। **रुक्म** का भी प्रयोग व्यवहार में था जो गले में लटकाकर पहना जाता था – **रुक्मवक्षसः** (ऋग्वेद 2.34.2)। इसके अतिरिक्त **कर्णशोभन, मुक्ताभूषण, मणिग्रीव** (मणि निर्मित आभरण) प्रभृति आभूषणों का प्रयोग होता था। पुरुष केश **जटाजूट (कपर्द)** बाँधते थे– **दक्षिणतस्कपर्दाः** (ऋग्वेद 7.32.1)। यजुर्वेद (11.50) **सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वोपशा** से स्त्रियों के भी **कपर्द** युक्त होने की सूचना प्राप्त होती है।

1. **ओपश्** – स्त्री पुरुष दोनों इसे धारण करते थे। ऋग्वेद (1.173.6) में इसकी तुलना आकाश से की गई है। जब केशों को **गोलाकार लपेट ऊपर एक गाँठ बाँध** दी जाती है, तब इसे **ओपश्** कहते थे।

2. **कुरीर** – यह एक शिरोभूषण था ऐसा विविध सन्दर्भों से ज्ञात होता है (वाजसनेयी संहिता 11.50)। सम्भवतः इसे **विवाह के अवसर** पर धारण करने की परम्परा थी। बहुत से विद्वान् **शृंगाकृति केश रचना** को भी कुरीर स्वीकार करते हैं।

3. **कुम्ब** – इसका सम्बन्ध स्त्रियों से था। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में पत्नी के सिर पर इनकी रचना का विधान प्राप्त होता है।

5.3.9 आवागमन के साधन

वैदिक काल का प्रधान साधन रथ था। उत्सवों में **रथ दौड़** हुआ करती थी। रथ लकड़ी का बनता था। इसमें दो अथवा चार घोड़े जोते जाते थे। रथों का वर्गीकरण वैशिष्ट्य के आधार पर होता था। **वाहकों** के आधार पर वृषरथ, षडश्व, पंचवाही आदि, **रथांगों के आधार पर** त्रिबन्धुर, अष्टाबन्धुर, सप्त-चक्र, हिरण्यचक्र, हिरण्य प्रउग आदि नाम होते थे।

अनस् का प्रयोग भी किया जाता था। इसमें **बैल** का प्रयोग किया जाता था। यह ऊपर से आच्छादित रहती थी। **धूर्षद** गाड़ी खींचने वाले पशु को कहते थे। यह मुख्यतया दो प्रकार की थी–**मनुष्यवाही एवं भारवाही** (अनाज ढोने वाली शकट)। छोटी गाड़ी **गोलिंग** अथवा **लघुमान** कहलाती थी। जलयान का भी तत्समय प्रयोग होता था। पतवार को **अरित्र** तथा नाविक को **अरितृ** कहा जाता था।

5.4 वैदिककालीन आर्थिक जीवन

वैदिक काल में आर्यों की आर्थिक दशा अत्यन्त समुन्नत थी। उन्हें किसी वस्तु का अभाव नहीं था। जीवन के लिए उपयोगी **प्रत्येक वस्तु का उत्पादन वे स्वयं** करते थे। प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने तथा अर्थोपार्जन की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। भौतिक जीवन का सुख आर्थिक समुन्नति पर ही निर्भर करता है, इसलिए आर्य सदा यही प्रार्थना करते थे कि वह हर प्रकार के धन के स्वामी बनें, उनका जीवन कभी भी अभावग्रस्त न हो। अन्न, जन, पशु, हिरण्य आदि उनकी प्रमुख सम्पत्ति थी। अर्थसाधनार्थ सम्पादित किये जाने वाले कार्य/उद्योग अधोलिखित हैं –

5.4.1 कृषि

आर्य कृषि प्रधान जाति थी। **अन्नं बहु कुर्वीत** यह आर्यों के आर्थिक जीवन का सूत्र वाक्य था। वे निपुण कृषक थे। ऋग्वेद में कृषि कर्म में सहायक तथा कृषि से सम्बन्धित उपकरणों का भूरिशः उल्लेख प्राप्त है। हल के लिए **सीर** तथा **लाङ्गल** (ऋग्वेद 4.57.8, 4.57.4) शब्द का प्रयोग होता है। बैलों की गर्दन के साथ जुआ को बाँधने वाली रस्सी **वरत्रा** कहलाती थी। कूप से जल निकालने के लिए घड़े में बाँधी जाने वाली रस्सी के लिए भी **वरत्रा** शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है (ऋग्वेद 10.106.5), बैलों को हाँकने वाली चाबुक **अष्ट्रा** थी (ऋग्वेद 4.57.4, 10.102.8), हल के नीचे लगी लोहे की पत्ती का नाम **फाल** था जिससे भूमि जोती जाती थी (ऋग्वेद 4.57.8, 10. 117.7)। फाल से खेत में जो रेखा बनती थी उसका नाम **सीता** था (ऋग्वेद 4.57. 6,7)। हल जोतने वाले के लिए **कीनाश** शब्द का प्रयोग किया गया है (ऋग्वेद 4.57. 8, अथर्ववेद 4.11.10, 6.30.1) जो सम्भवतः **किसान** शब्द का पूर्वरूप है। ऋग्वेद के एक स्वतन्त्र सूक्त (4.57) में सम्पूर्ण कृषिकर्म का उल्लेख है। प्रारम्भ के तीन मन्त्रों में क्षेत्र के स्वामी देवता **क्षेत्रपति** से कृषि के लिए अनुकूल होने, पर्याप्त वर्षा करने तथा सभी प्रकार के अरिष्टों से रक्षा करने के लिए प्रार्थना की गई है। शेष **पाँच मन्त्रों में** कृषि विषयक प्रत्येक कार्य की सफलता की प्रार्थना है–

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्। शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय।।
शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः। तेनेमामुप सिञ्चतम्।।

ऋग्वेद 4.57.4-5

एक मन्त्र में निर्देश है कि **कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः** (ऋग्वेद 10.34. 13) अर्थात् कृषि ही करो और उससे प्राप्त वित्त को ही पर्याप्त समझते हुये उसमें प्रसन्न रहो।

कृषिभूमि के लिये **क्षेत्र** शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। इससे ज्ञात होता है कि सबके खेत अलग-अलग होते थे (ऋग्वेद 10.33.6)। इन खेतों का माप होता था (ऋग्वेद 1. 110.5)। खेत पर व्यक्ति का पूर्ण अधिकार होता था (ऋग्वेद 8.91.5)। भूमि दो प्रकार की थी **उर्वरा** तथा **आर्तना** (ऋ.वे.1.127.6)। जो भूमि उपजाऊ होती थी वह **उर्वरा** अथवा **अप्नस्वती** कहलाती थी तथा जो भूमि बोने के योग्य नहीं होती थी उसे **आर्तना** कहते थे। जमीन को उपजाऊ बनाने के लिये उसमें खाद **(करीष)** डाला जाता था (अथर्ववेद 3.14.3)। उर्वरा भूमि के चारों तरफ घास वाली भूमि होती थी, जो सबकी साझी होती थी। उसमें सबके पशु चरते थे। वह जमीन **खिल** अथवा **खिल्या** कहलाती थी।

कृषि को हानि न होने पाये इसके लिये लोग हमेशा सचेत रहते थे। पक्षी, कीड़े आदि फसल को नष्ट कर देते थे। ऋग्वेद (10.68.1) में पक्षियों से फसल की रक्षा करने वाले कृषकों के शब्द करने का उल्लेख है। **टिड्डी** कृषि के बड़े शत्रु थे। छान्दोग्य उपनिषद् (1.10.1) में उनके लिये **मटची** शब्द का प्रयोग किया गया है। अथर्ववेद (6.50) सम्पूर्ण सूक्त **कृषि की कीटों से रक्षा के लिये** किये जाने वाले **अभिचार** का उल्लेख करता है। **अतिवृष्टि** तथा **अनावृष्टि** दोनों से फसल की रक्षा के लिये देवताओं से प्रार्थना की जाती थी।

फसल के पकने पर उसे **दात्र (हंसिया)** से काटते थे (ऋग्वेद 8.78.1)। उसी के प्रकार का एक **सृणी (अङ्कुश)** होता था, जिससे फसल काटने के अतिरिक्त वृक्ष का पका फल भी तोड़ा जाता था (ऋग्वेद 1.58.4, शतपथ ब्राह्मण 7.2.2.5)। फसल को काट कर उसे **पुल्लियों** में बाँधते थे जिसे **पर्ष** कहते थे। इनको खलिहान में लाया जाता था जिसे **खल** कहते थे। ऋग्वेद (10.101.3) के अधोलिखित मन्त्र में सम्पूर्ण **कृषिकर्म** का उल्लेख प्राप्त होता है –

युनक्तु सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सण्यः पक्वमेयात्।।

गहाई के अनन्तर **शूर्प** से **अन्न** और **भूसे** को अलग किया जाता था। इस कार्य के सम्पादक को **धान्यकृत्** कहा जाता था (ऋग्वेद 10.84.13)। अन्न को **उर्दर** नामक पात्र से नाप कर **कोठियों में** रखते थे। जिस भण्डार में अनाज रखा जाता था उसे **स्थिवि** कहा जाता था (ऋग्वेद 10.63.3)।

5.4.2 पशुपालन

कृषि प्रधान समाज में कार्य पशुओं के अभाव में सम्पन्न नहीं हो सकता है। पुरुष सूक्त (ऋग्वेद 10.90.8) में **तीन प्रकार** के पशुओं का उल्लेख प्राप्त होता है– **वायव्य, आरण्य** तथा **ग्राम्य**। ऋग्वेद (10.90.10) के अनुसार पशुओं की दो श्रेणियाँ हैं– **उभयदन्त** एवं **अन्यतोदन्त**। पशुओं के अन्य प्रकार के विभाग यथा– **एकशफ, क्षुद्र, हस्तादान, मुखादान** इत्यादि के भी उल्लेख वैदिक साहित्य में इतस्ततः प्राप्त होते हैं।

1. **गाय** – शतपथ ब्राह्मण (3.3.3.2) में स्पष्ट उल्लेख है कि गाय से दूध, दधि, मस्तु, आतंचन, नवनीत, घृत आमिक्षा तथा वाजिन् प्राप्त होता है –**गोवैं प्रति धुक् तस्यै शृतं तस्यै शरः तस्यै मस्तु तस्या आतंचनं तस्यै नवनीतं तस्यै घृतं तस्या आमिक्षा तस्यै वाजिनम्।** अग्निहोत्र सम्बन्धित द्रव्यों की प्राप्ति का मुख्य साधन होने से यह **अग्निहोत्री** भी कहलाती थी। दक्षिणा के क्रम में इनका प्रचुर प्रयोग था। यह बहुमूल्यवती होती थी अतः इनके विनिमय से सोमक्रयण किया जाता था। ऋग्वेद (6.28.1-8) में गाय की महिमा का वर्णन प्राप्त होता है। गाय के लिये विविध **स्वरूप के कारण**– ककी, शुक्रा, पृश्नी, कृष्णा एवं रोहिणी, **सन्तति, प्रसव एवं दूध देने की स्थिति के आधार पर**– प्रत्ता, गृष्टि, धेना, धेनु, धेनुका, धेनुष्टरी, सूतवशा, वेहत्, निवान्यवत्सा, निवान्या, अभिवान्यवत्सा, अभिवान्या, वान्या, स्तरी एवं वशा तथा **अवस्था के आधार पर**– त्र्यवी, दित्यौही, पंचावी, त्रिवत्सा, तुर्यौही एवं प्रष्ठौही, **चिह्नांकन के आधार पर**– अष्टकर्णी, कर्करिकर्णी, दात्रकर्णी, स्थूणाकर्णी, छिद्रकर्णी एवं विष्टकर्णी प्रभृति विशेषण पद प्रयुक्त होते थे। गाय का दोहन प्रायशः तीन बार किया जाता था– प्रातर्दोह, संगव, सायंदोह। **गोपालों** का कार्य गायों को हाँकना तथा **सर्वविध रक्षण** करना था (ऋग्वेद 1.120.6)। इस क्रम में **पूषन्** की आराधना भी आर्य **गाय के रक्षणार्थ** किया करते थे।

2. **अजा** – वाजसनेयी संहिता (30.11) में बकरी पालने वाले के लिए **अजपाल** संज्ञा का प्रयोग प्राप्त होता है। गाय के अतिरिक्त दुग्ध देने वाले पशुओं में **अजा** प्रमुख थी। इसके **दुग्ध से भी होम** का विधान तैतिरीय संहिता (5.1.7) में प्राप्त होता है। **प्रवर्ग्य** में **गो-क्षीर** के अतिरिक्त **अजा-क्षीर** का भी आहुतियों में प्रयोग किया जाता था।

3. **अनड्वान्** – कृषि कर्म हेतु **बैल** प्रमुख पशु था। बैल के लिये **वृषभ, उक्षन्, ऋषभ, गौ, वाह, अनडुह्** आदि कई शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है। **अनस्** गाड़ी खींचने के कारण **अनडुह्** कहा जाता था। वैदिक काल में सभी कृषक बैल का प्रयोग करते थे। हल में जोते जाने वाले तथा **गाड़ी खींचने वाले वधिया (वध्रि)** होते थे (ऋग्वेद 1.32.7)। जो वधिया नहीं होते थे उन्हें गायों के साथ रखा जाता था।

4. **अश्व** – यह युद्ध का प्रमुख पशु था। ये बहुत मूल्यवान् होते थे। विशिष्ट अवसरों पर इनका आभूषणों द्वारा शृंगार किया जाता था (ऋग्वेद 10.78.11)। यह विविध रंगों के होते थे, यथा–**हरित, हरी, अरुण, पिशंग, रोहित, श्यावा, श्वेत** आदि। **कृष्णकर्णीय श्वेताश्व को बहुमूल्य** माना जाता था (ऋग्वेद 5.17.15)। **अत्य, अर्वन्, वाजिन्, सप्ति, हय** आदि अनेक शब्दों का प्रयोग अश्व के क्रम में प्राप्त होता है। **सिन्धु प्रदेश** के अश्व बहुत **प्रसिद्ध** माने जाते थे इनके लिये **सैन्धव** विशेषण का प्रयोग प्राप्त होता है (शतपथ ब्राह्मण 11.5.5.12)। इनका प्रयोग सवारी के अतिरिक्त रथ में जोतने के लिये भी किया जाता था। **षड्वीश, रश्मि, प्रग्रह, अश्वाभिधानी, अश्वाजनि, कशा** आदि अश्व पालन के निमित्त प्रयुक्त सहायक वस्तुओं का उल्लेख भी प्राप्त होता है। घोड़ियों की **गति घोड़ों से अधिक** होती थी।

अन्य भारवाहक पशुओं में **ऊँट, गर्दभ, खच्चर** प्रभृति प्रमुख थे (तैत्तिरीय संहिता 5.1.5.5)। **कुत्ते** का प्रयोग रखवाली एवं हल्का भार वाहन हेतु किया जाता था। **भेड़ों** को भी पाला जाता था। **महिषी तथा हाथी** का भी प्रयोग तत्समय किया जाता था।

5.4.3 उद्योग

कृषि एवं पशुपालन के अतिरिक्त एतत् सम्बद्ध अन्य कार्य लोग करते थे। जिनका वर्णन अधोलिखित है –

1. **काष्ठ** – यह मुख्य रूप से **तक्षा/बढई** के अधीन था। समस्त कृषि उपकरणों का निर्माण यही किया करता था। **हल, गाड़ी, गृहोपयोगी सामग्री, सूक्ष्म नक्काशी वाली वस्तुओं** आदि का निर्माण **तक्षा** ही करता था (काठक संहिता 12.10)। ऋषियों ने **तक्षण कर्म की तुलना मन्त्र निर्माण से की** है (ऋग्वेद 1. 62.13)। वैदिक देवताओं में **त्वष्टा** को तक्षण से सम्बद्ध माना गया है।

   रथ का निर्माण करने वाले **राजा से सम्बद्ध** होते थे तथा इन्हें **रथकार** कहा जाता था (अथर्ववेद 3.5.1)। यजुर्वेद (16.27) के आधार पर रथकार एक **जाति विशेष** का नाम है। इनका प्रमुख औजार **कुलिश** था (ऋग्वेद 3.2.1)।

2. **धातु** – कृषि के उपयोग में आने वाले लोहे से बनने वाले सभी उपकरणों का निर्माण **लोहार/कर्मार** करता था (ऋग्वेद 9.112.2, अथर्ववेद 3.5.6)। इस कम में **ध्मातृ** का प्रयोग प्राप्त होता है जिसका अर्थ है **धौंकने वाला** अथवा **धातु गलाने वाला** (ऋग्वेद 5.9.5)। बाणों में पक्षियों के पंख लगाने का काम वही करता था। युद्धोपयोगी उपकरणों यथा **कवच, ढाल** इत्यादि का निर्माण भी वही करता था।

   धातुओं में हिरण्य, रजत आदि से आभूषण ताबीज आदि के निर्माण का उद्योग हिरण्यकार करता था (वाजसनेयी संहिता 30.17)। मणि की शक्ति में आर्यों का अटूट विश्वास था। अतः सर्वबाधाशमन हेतु विविध प्रकार की मणियों को धारण करते थे। इस प्रकार के निर्माण कार्य के प्रसंग में मणिकार संज्ञा भी प्राप्त होती है (तैत्तिरीय ब्राह्मण 3.4.3.1)। स्वर्ण, रजत तथा मणियों के आभूषणों का निर्माण मणिकार करते थे, जो रत्न परीक्षक होते थे।

3. **वस्त्र** – वैदिक काल में **सूत, रेशम तथा ऊन** तैयार कर वस्त्र निर्माण किया जाता था। सूत को बुनने के कम लम्बाई में **तन्तु** चौड़ाई में **ओतु** कहा जाता था। बुनने के औजार को **तसर**, करघे को **वेमन्**, खूँटी को **मयूख**, सूत को खींचनें के लिये भार रूप वस्तु को **सीस** कहते थे (ऐतरेय ब्राह्मण 5.15)। बुनकर को **वाय** कहते थे। कढ़ाई किये गये वस्त्रों को **पेशस्** कहा जाता था। **मलमल** जैसे बारीक वस्त्र भी होते थे। उषस् के वर्णन में भी इस प्रकार के वस्त्रों का संकेत है।

4. **चर्म** – वैदिक काल में चर्म का उद्योग करने वाले **चर्मण्य** कहलाते थे (ऐतरेय ब्राह्मण 5.32)। धनुष की **प्रत्यंचा, अश्वों की लगाम, रथ बाँधने की रस्सी, चाबुक की रस्सी, जूते** प्रभृति वस्तुओं का निर्माण चमड़े से ही होता था। **चर्म से वाद्यों** का भी निर्माण होता था। अथर्ववेद (5.21.7) तथा शतपथ ब्राह्मण (5.2.1. 12) में **मृग एवं अजा** चर्म का बहुत महत्त्व बताया गया है। बैल के चर्म से **अधिषवणचर्म** (सोम को पीसने हेतु आधार) का निर्माण किया जाता था (ऋग्वेद 10.94.9)। ग्राम्य की अपेक्षा वन्य पशुओं के चर्म का अधिक प्रयोग होता था। अतएव **वन्य पशुओं का अधिक शिकार** भी किया जाता था। **अजिनसन्ध** (अजिनवस्त्र तैयार करने वाला) तथा **चर्मम्न** (चर्म को रगड़कर चिकना करने वाला) दो प्रकार के चर्मकारों के भेद थे।

5. **मृत्पात्र** – वैदिक काल में मृत् से **गृह्य एवं यज्ञीय पात्रों** को तैयार करने वालों के लिये **कुलाल** शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है (वाजसनेयी संहिता 16.27)। कुम्भकार के लिए **मृत्पच** शब्द का प्रयोग होता था (मैत्रायणीय उपनिषद् 2.6. 3. 3)। ऋग्वेद (10.89.7) में **इन्द्र** द्वारा पर्वतों को **नये कुम्भ की तरह** जोड़ने वाला बताया गया है। कुलाल जिस पर रखकर मिट्टी का बर्तन बनाता था उसे **कौलाल चक** कहा जाता था (शतपथ ब्राह्मण 11.8.1.1)।

6. **चटाई** – वैदिक काल में **कट** एवं **कशिपु** शब्द का प्रयोग तैत्तिरीय संहिता (5.3. 12.2), शतपथ ब्राह्मण (13.2.1.3) एवं अथर्ववेद (6.138.5) में चटाई के निमित्त प्राप्त होता है। यह कार्य प्रायशः स्त्रियाँ करती थीं यतो हि **विदलकारी** पद का प्रयोग बाँस की टोकरी बनाने वाली औरत के निमित्त प्रयुक्त **वाजसनेयी संहिता (30.8)** में प्राप्त होता है। इस क्रम में **वेतस्** पद का भी प्रयोग प्राप्त होता है। वेतस् से भी **टोकरी, चटाई** बनाये जाते थे। शतपथ ब्राह्मण (12.8.3.6) मे **रस्सी से आसन्दी** के बुनने का वर्णन प्राप्त होता है। **हिरण्मय कशिपु** अर्थात् **वेतस्** की चटाई पर होता उपवेशन्, करता था (शतपथ ब्राह्मण 13.4.3.1)। **कण्टकार** एवं **कण्टकारी** पद के प्रयोग उस पुरुष एवं स्त्री के लिये है जो **काँटे से चटाई** निर्माण करते थे। ऋग्वेद (10.85.34) में **कटुक** वस्त्र का उल्लेख है जो सम्भवतः चटाई के समान कोई मोटा वस्त्र हो।

उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्य कई लघु उद्योग थे जो तत्समय प्रचलित थे। साथ ही कार्य के आधार पर लोगों के नाम भी प्रचलित थे – यथा **रथकार, पेशत्कारी** इत्यादि। वाजसनेयी संहिता (30) में लगभग 159 प्रकार के उद्योगों का संकेत प्राप्त होता है।

5.4.4 वाणिज्य एवं यातायात

वैदिक काल में वस्तुओं के **कय की इकाई गाय, निष्क (स्वर्ण मुद्रा)** जो क्रीत वस्तु के **शुल्क** के रूप में दिया जाता था (ऋग्वेद 4.24.10, 1.126.1-2, 8.1.5)। वस्तु के मूल्य को **वस्न** तथा एतद्रूप में धन प्राप्त करने की कामना करने वाले को **वस्नयन्** कहा जाता था। उस समय भी क्रय-विक्रय करने की प्रक्रिया थी। वस्तुओं को माप-तौलकर **मोल-भाव** विक्रय किया जाता था (तैत्तिरीय संहिता 2.3.2.1)। अथर्ववेद के मन्त्रों में **औषधियों के कयण** का वर्णन प्राप्त होता है। **ऊन** तथा **रेशम** का व्यापार भी तत्समय उन्नत था।

व्यापार करने वाले के लिये **वणिज्** शब्द का प्रयोग किया गया है। इन्द्र को भी वणिज् बताया गया है क्योंकि वह इस हेतु प्रेरित करता है (अथर्ववेद 3.15.1)। व्यापार का **मुख्य प्रयोजन धन प्राप्त** करना था (अथर्ववेद 3.15.5)। व्यापार हेतु सामग्री को एक स्थान से अन्यत्र ले जाते समय विविध भयों **(मार्ग काठिन्य, भक्ष्य, पेय, चोर, हिंसक पशु, मौसम)** की आशंका से निवृत्ति हेतु **इन्द्र से रक्षा प्रार्थना** तथा **अग्नि की उपासना** का उल्लेख प्राप्त होता है।

सामान ढोने के लिये **अनस्** (ऋग्वेद 4.30.10) का प्रयोग किया जाता था, जो सामान्यतः **बैल जोतकर** चलायी जाती थी। **अश्व** का प्रयोग मुख्यतया **युद्ध में** किया जाता था। **नौकाओं** द्वारा समुद्र मार्ग से भी आवागमन का उल्लेख (ऋग्वेद 1.25.7) प्राप्त होता है। यह सन्दर्भ स्पष्ट करते हैं कि **समुद्र या नदी मार्ग** से भी **व्यापार** हेतु आवागमन किया जाता था (ऋग्वेद 1.56.2)।

वैदिक काल में **ऋण लेने की भी परम्परा** थी विशेषतः **द्यूतक्रीडा** के समय पर। **पूर्वजों के द्वारा** लिये गये **ऋण न चुकाये** जाने पर **वंशजों को चुकाने** पड़ते थे अथवा **दासत्व स्वीकार** करना पड़ता था (अथर्ववेद 6.115.2-3)। ऋग्वेद (2.28.9) के मन्त्र में **वरुण से ऋणमोचनार्थ प्रार्थना** का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है।

पणि तत्समय के प्रसिद्ध **व्यापारी** एवं **ऋण प्रदाता** माने जाते थे। ऋग्वेद (8.66.10) में अत्यधिक ब्याज ग्रहण करने के कारण इनको **वेकनाट** भी कहा जाता था।

5.5 वैदिककालीन राजनीतिक जीवन

वैदिक शासन-व्यवस्था के तीन प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं–**धर्मतान्त्रिक, लोकतान्त्रिक अथवा प्रजातान्त्रिक तथा राजतान्त्रिक।** किसी राजनैतिक संस्था के विकास से पूर्व समाज **प्रकृति-नियम** द्वारा शासित था, जिसको हम स्वशासन अथवा धर्मतान्त्रिक शासन कह सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति **ऋत** के नियम का पालन करता था। यह एक **आदर्श शासन-व्यवस्था** थी जिसमें किसी तन्त्रात्मक संस्था के बिना ही सभी ऋतधर्म के नियमों के द्वारा शासित थे। वैदिक साहित्य में प्रयुक्त **अराजक, अराजता, अपरुद्ध आदि शब्द राजाविहीन समाज** की ओर संकेत करते हैं। **धर्मतन्त्रात्मक** शासन का उल्लेख **महाभारत** में प्राप्त होता है–

> **न राज्यं न राजाऽऽसीन्न च दण्ड्यो न च दाण्डिकः।**
> **धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्।। महाभारत शान्तिपर्व 59.19**

उपर्युक्त से ज्ञात होता है कि उस समय **न तो कोई राज्य** था और न ही **कोई राजा**, न कोई **दण्ड्य** था और न ही **कोई दण्ड देने वाला**, सभी प्रजायें अपना धर्म मानकर परस्पर एक दूसरे की रक्षा करती थीं परन्तु जब लोगों के मन में **क्रोध, अहंकार, लोभ, स्वार्थ, घृणा** और दूसरी कई **आसुरी वृत्तियों** का वास हो गया तो **धर्म का आदर्श शासन** प्रभावित हुआ। परिणामतः बलवान् ने कमजोर को भयभीत करना आरम्भ कर दिया। अब एक ऐसे शक्तिशाली और विवेकी व्यक्ति की आवश्यकता थी जो कमजोर को केवल सहायता अथवा संरक्षण ही प्रदान न कर सके प्रत्युत शोषक बलशाली को दण्ड भी दे और धर्म के शासन को भी सुनिश्चित कर सके। ऐतरेय-ब्राह्मण में इस बात का उल्लेख है कि **राजा की अनुपस्थिति में देवता असुरों से पराजित हो गये। जब उन्होंने सोम को अपना राजा बनाया तब समस्त दिशाओं पर विजय प्राप्त की।** शतपथ ब्राह्मण में भी एक ऐसी स्थिति का वर्णन है–**जब जल के अभाव में सब ओर सूखा पड़ा और मत्स्य-न्याय की स्थिति आ गई।** यथार्थतः भारत के सांस्कृतिक इतिहास में इस मत्स्यन्याय की स्थिति नहीं आयी तथापि राजा की आवश्यकता पर बल देने के लिये इसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। कौटिल्य ने भी इस बात का उल्लेख किया है कि **मत्स्यन्याय** की स्थिति से दुःखी होकर लोगों ने **अपनी सुरक्षा के लिये मनु को अपना राजा नियुक्त** किया।

वैदिक साहित्य में प्रजातन्त्रात्मक शासन-प्रणाली का उल्लेख प्राप्त होता है। शासन का प्रमुख **राजा** कहलाता था किन्तु **राजसिंहासन** उसे **वंशानुगत अधिकार** से प्राप्त नहीं होता था। **प्रजा** द्वारा उसका **चुनाव** होता था। संहिताओं के बहुधा ऐसे सन्दर्भ प्राप्त होते हैं जिनमें राजा के चुनाव का उल्लेख है। ऋग्वेद (10.173.1-2) का एक ऋषि कहता है–**हे राजन्! हमने आपका राष्ट्राध्यक्ष के रूप में वरण किया है**

इसलिये आप हमारे बीच रहिये, आप शक्तिशाली बनिये, आपको सभी प्रजा पसन्द करे, आपके हाथों से राष्ट्र अलग न होवे। इसी प्रकार अथर्ववेद (3.4.2) में भी ऋषि कहता है–**हे राजन्! इस प्रजा ने तुम्हें राजा नियुक्त किया है, पाँच देवियों ने तुम्हें चुना है, राष्ट्र के सर्वोच्च पद को आप अलंकृत कीजिये और वहीं से अपनी प्रजा में धन का वितरण कीजिये।** यह उल्लेखनीय है कि वेदकालीन **प्रजातान्त्रिक शासन** लोगों के **हितों** और **राष्ट्र की सुरक्षा** का विशेष ध्यान रखता था। यदि राजा पद के अनुरूप अपने को शक्तिशाली या योग्य सिद्ध नहीं कर पाता था तो उसे राजपद से हटा कर प्रजा किसी दूसरे व्यक्ति को राजा चुन लेती थी। कभी-कभी उसी राजा को जिसे पद से हटा दिया गया हो **पुनः राजपद पर प्रतिष्ठित किया** जाता था यदि वह किसी प्रकार जनता के विश्वास को प्राप्त कर ले और यह आश्वासन दे कि वह **प्रजा को एक कुशल प्रशासन** प्रदान करेगा। अथर्ववेद (3.3) में एक ऐसे राजा का वर्णन है जो अपने खोये हुये राज्य को पुनः प्राप्त करता है। राजा के एकबार चुने जाने पर उसके उस पद पर प्रतिष्ठित रहने के लिये अनेक याज्ञिक कृत्य सम्पन्न किये जाते थे।

वैदिक साहित्य में ऐसे भी अनेक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं जो उस समय की प्रचलित **राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली** की पुष्टि करते हैं। उस समय कई राज्य थे जो अलग-अलग राज्यों से शासित थे। क्षेत्रफल की दृष्टि से राज्य छोटे थे, किन्तु संहिताओं में पाये जाने वाले **सम्राज्, एकराज, अधिराज, राजाधिराज** शब्द राज्य के विस्तृत होने का संकेत देते हैं। एक राजा अपने को अन्य राजाओं से श्रेष्ठ दर्शाने के लिए बड़ी-बड़ी उपाधियाँ धारण करता था। **अश्वमेध** तथा **राजसूय** यज्ञ इस बात की ओर संकेत करते हैं कि महत्त्वाकांक्षी राजा पड़ोसी राज्यों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए सदा सक्रिय रहते थे।

जब राजतन्त्रात्मक प्रणाली ने काम करना प्रारम्भ किया उस समय राजा का मुख्य कर्त्तव्य **प्रजा तथा राज्य की शत्रुओं से रक्षा करना** था। राजा **प्रजा का संरक्षक** था अतः उसकी रक्षा करना उसका उत्तरदायित्व था। प्रजारक्षणवत् **ऋत** की रक्षा करना भी उसका प्रमुख कार्य था। अतएव उसे **ऋतस्य गोपाः** कहा जाता था। **ऋत के संरक्षक** के रूप में वह **वरुण** था। राज्याभिषेक के समय उसे **यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र एवं रुद्र** के रूप में सम्बोधित किया जाता था। **यम** के रूप में वह अपराधियों को दण्ड देने वाला, **कुबेर** के रूप में प्रजा में धन बाँटने वाला, **वरुण** के रूप में नैतिक मूल्यों का संरक्षक, **इन्द्र** के रूप में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला तथा **रुद्र** के रूप में पापियों का संहारक था। स्पष्ट है कि वैदिककालीन राजा में देवताओं के ये गुण पाये जाते थे इसीलिये वह **ईश्वर का रूप** माना जाता था। इसे **धर्मपति** की भी उपाधि प्राप्त थी। धर्मपति होने के कारण वह अदण्ड्य था। उसे कोई मनुष्य दण्ड नहीं दे सकता था। यह बात उल्लेखनीय है कि यहाँ धर्मपति शब्द का अर्थ **धर्म का स्वामी** नहीं अपितु **धर्म का पालक** था इसलिये धर्म के नियम से वह ऊपर नहीं था धर्म के नियम बनाने का भी उसे अधिकार नहीं था। यदि वह स्वयं धर्म का उल्लंघन करता था तो वह दण्डित होता था। राज्याभिषेक के समय एक कृत्य सम्पन्न होता था। तत्क्षण **अध्वर्यु** और **उसकी प्रजा** जब उस पर पवित्र जल से अभिषेक करती हुई **अदण्ड्योऽसि** कहती थी उसी समय एक ब्राह्मण **धर्मदण्ड्योऽसि** कहता था। यह प्रथा उस वैदिककाल में **राजतन्त्र के ऊपर धर्मतन्त्र के नियन्त्रण** की द्योतक है।

वैदिक काल में राष्ट्र कई प्रशासनिक इकाईयों में विभक्त था। ये प्रशासनिक इकाईयाँ थीं–**ग्राम, जन, विश एवं राष्ट्र।** विभिन्न गृहों के समुदाय को, जो सुरक्षा की दृष्टि से एक दूसरे के पास-पास बनाये गये होते थे, **ग्राम** कहा जाता था। ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी और उसका प्रमुख **ग्रामणी** कहलाता था। **ग्रामणी** शब्द इस बात की ओर संकेत करता है कि वैदिक प्रजातान्त्रिक प्रणाली के अन्तर्गत वह ग्राम का नेता होता था और राज्य सरकार की सभाओं में उस ग्राम का प्रतिनिधित्व करता था। उसका कर्त्तव्य ग्रामीणों के दैनिक कार्यक्रम की देखभाल करना था। राजा की ओर से उन्हें सुरक्षा प्रदान करनी पड़ती थी। वह एक समृद्ध व्यक्ति होता था। ऋग्वेद (10.62.11) में मनु को एक **ग्रामणी** कहा गया है और उनके क्रम में **सहस्रदा, हजारों का दान करने वाला** यह अभिधान प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद (10.107.5) में ग्रामणी के उदात्त चरित्र का वर्णन है। वह पुरोहितों को दक्षिणा देने में **ग्राम के सभी लोगों में प्रथम** रहता है।

राज्य की दूसरी बड़ी प्रशासनिक इकाई **जनपद** थी। इसमें एक विशेष समुदाय के लोग होते थे। ऋग्वेद में **जन** शब्द का अर्थ मनुष्य के अतिरिक्त **जनसमूह** भी है। वैदिक साहित्य में अनेक जनों का उल्लेख है। जन का प्रधान **जनराज** कहलाता था (ऋग्वेद 1.53.9)। **जनस्य गोपा** शब्द भी जनों के राजा का वाचक था (ऋग्वेद 3.43. 5)।

राज्य की सबसे बड़ी इकाई राष्ट्र थी जिसका शासक राजा होता था। एक राष्ट्र में कई जनपद होते थे। अनेक जनपदों से मिलकर राष्ट्र बनता था। राष्ट्र के सभी लोगों को **विश्** कहा जाता था। ऋग्वेद (10.11.4) में **आर्यविश्** और **दासी विश्** (3.34.9) का उल्लेख प्राप्त होता है जो सम्भवतः एक ही राष्ट्र में रहने वाले **आर्य** और **दास जनों** की ओर संकेत है। राजा को **विश्-पति** या **विशां पति** कहा जाता था। ऐसे सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, जिनमें राजा और विशों के परस्पर सम्बन्ध का उल्लेख है। राजा का चुनाव **विश्** करते थे और वह तब तक शासन करता था जब तक वे चाहते थे। राजा हमेशा **विशों के समर्थन को जीतने का** प्रयत्न करता था। दोनों के परस्पर सम्बन्ध को मधुर बनाने के लिये अनेक याज्ञिक कृत्य किये जाते थे। तैत्तिरीय संहिता (1.6.10.9) में यह कहा गया है कि **सामन्** के द्वारा किये गये यज्ञ का फल **राष्ट्र** को प्राप्त होता है और **ऋक्** के द्वारा किये गये यज्ञ का फल **विश्** को। तैत्तिरीय संहिता (3.5.7.5) में **राष्ट्र** को एक**पर्ण** तथा **विश्** को **अश्वत्थ** वृक्ष कहा गया है। जब **जुहू पात्र पर्ण का** तथा **उपभृत् अश्वत्थ** का बना हो तो इसका अभिप्राय है **राजा विश् के ऊपर है।** पूर्ववैदिक काल में **विशों का राजा के** ऊपर **पूर्ण नियन्त्रण** होता था। राजा भी राज्य की धरोहर तथा अपने को धरोहर का रक्षक समझता था। राज्याभिषेक के समय इन शब्दों के साथ राजा को राजधानी सौंपी जाती थी –**हे राजन् यह राज्य आपका है, आप इसके नियन्त्रक हैं। इसकी सुरक्षा तथा वृद्धि के लिये इसे आपको सौंपा जाता है।**

पूर्व वैदिककाल में राज्य कार्य निष्पादन में राजा की सहायता करने के लिए विशों की **दो संस्थायें** थी **सभा** और **समिति**। इन दोनों का राजा के ऊपर पूर्ण नियन्त्रण भी होता था। अथर्ववेद (7.12.1) में इनको **प्रजापति की जुड़वा पुत्रियाँ** कहा गया है। **सभा** शब्द के दो अर्थ हैं –**लोगों का समूह** और वह गृह जहाँ लोग एकत्रित होते हैं। यह सभागृह **द्यूतक्रीडा** और **अन्य सामाजिक कार्यों** के लिए होता था। सभा के लोगों को **सभासद** कहा जाता था और इसके **अध्यक्ष को सभापति।** सभा का सदस्य बनना गौरवपूर्ण होता था। लोग यही कामना करते थे कि उसका पुत्र **सभेय**

हो (ऋग्वेद 1.91.20, वा.सं. 22.22)। ऋग्वेद (2.24.13) में सभा का सदस्य बनने के लिए स्तुतियों के साथ **ब्रह्मणस्पति देवता** को आहुतियाँ प्रदान करने का उल्लेख किया गया है। मैत्रायणी संहिता (2.2.1) में ग्राम के न्यायाधीश **ग्रामवादिन्** के न्यायालय को सभा कहा गया है। वाजसनेयी संहिता (30.6) में **सभाचर** का उल्लेख है जो **सभा का सदस्य** होता था।

समिति से सम्बन्धित अनेक सन्दर्भ भी वैदिक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं यह एक सामान्य सभा थी जिसमें सभी वर्गों के प्रतिनिधि होते थे। समिति की बैठकों की **अध्यक्षता राजा स्वयं** करता था। इस समिति को **संसद** नाम से भी जाना जाता था और इसके सदस्यों को भी **संसद** कहा जाता था। समिति की बैठकों में राज्य के अधिकारी विभिन्न स्थानों के लोगों के सामने **राजा द्वारा प्राप्त धन की घोषणा** करते थे। ऋग्वेद (8.45.25) सभी विषयों में **सभी की सहमति** अपेक्षित थी।

वैदिक भारत के राजनैतिक इतिहास में **राजा के साथ-साथ पुरोहित** का महत्त्वपूर्ण स्थान था। राजा और पुरोहित जो क्रमशः **क्षत्र** और **ब्रह्म** बल का प्रतिनिधित्व करते थे, वैदिक प्रशासनरूपी **रथ के दो पहिये** थे। पुरोहित ब्राह्मण होता था किन्तु वह केवल धार्मिक कार्यों के सम्पादन में ही राजा की सहायता नहीं करता था अपितु राजा के सम्पूर्ण राजनीतिक मामलों के समाधान में वह अपनी भूमिका निभाता था। यहाँ तक कि युद्धकाल में भी वह राजा के साथ युद्धभूमि में जाता था और वहाँ अपने राजा की विजय के लिये देवताओं से प्रार्थना करता था। ऋग्वेद (4.50.7-9) में ब्राह्मण पुरोहित की महत्ता का प्रतिपादन करते हुये कहा गया है कि **वही राजा अपने राज्य में सुप्रतिष्ठित होता है जिसके शासन में ब्राह्मण पुरोहित का सम्मान होता है।** अथर्ववेद (5.17–19) में ब्राह्मण पुरोहित की महिमा का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। गौतम धर्मसूत्र (11.14.15) के अनुसार राजा को सभी धार्मिक कृत्यों के सम्पादन के लिए एक अच्छे कुल के विद्वान् वक्ता, सुन्दर, उचित आयु के, गुणी, उच्च चरित्र वाले तथा अच्छे स्वभाव वाले ब्राह्मण को अपना पुरोहित नियुक्त करना चाहिये। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (2.5.10,14) के अनुसार पुरोहित को धर्मशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र में पूर्ण पारंगत होना चाहिये। श्रौतसूत्रों में **पुरोहित** पद के अभ्यर्थी के लिए **बृहस्पति सव** नामक यज्ञ का विधान है।

वैदिक ग्रन्थों (शतपथ ब्राह्मण 5.3.1.1-13) में प्रशासनिक व्यवस्था के घटक कई अधिकारियों का उल्लेख प्राप्त है। राजसूय याग में **रत्न हवींषि** नामक व्यक्तियों के प्रसंग में राजदरबार के **11 अधिकारियों** का उल्लेख है जिन्हें **रत्निन्** कहा जाता था। ये रत्निन् थे–**महिषी, पुरोहित, सेनानी, सूत, क्षत्तृ, संग्रहीतृ, भागदुघ, अक्षावाप, रथकार, ग्रामणी तथा पालागल।** राज्य के स्थायित्व के लिए राजा के साथ इनका सामनस्य आवश्यक था क्योंकि इनमें से किसी के भी रुष्ट होने से राज्य **संकटापन्न** हो सकता था। राज्य के अधिकारियों की गतिविधियों तथा विशों की स्थिति के विषय में राजा को हमेशा जानकारी देते रहने के लिए **गुप्तचर विभाग** भी सक्रिय था। गुप्तचर के लिए **स्पश्** शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। राजा के सन्देशवाहक भी होते थे जिनको **दूत** कहा जाता था। दूत ही विभिन्न राज्यों के साथ संचार के साधन थे। पूर्व वैदिक साहित्य से उस समय की प्रचलित न्याय प्रणाली तथा कानून के विषय में हमें बहुत अधिक जानकारी नहीं प्राप्त होती, किन्तु धर्मसूत्रों में इसका अधिक विवेचन प्राप्त होता है।

5.6 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! वैदिक साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित इस खण्ड में आपने वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों एवं उपनिषदों का अध्ययन किया तथा यह जाना कि किस वेद से कौन से ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् सम्बद्ध है। अध्ययन के इस क्रम में आपने वैदिककालीन भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के विषय में भी प्रस्तुत इकाई के माध्यम से अध्ययन किया। इस इकाई के माध्यम से आपने जाना कि वैदिककालीन **नदियों, पर्वतों** एवं **समुद्रों** का स्वरूप तत्समय से अद्यावधि पर्यन्त निरन्तर परिवर्तनशील रहा है। स्त्री-पुरुष की **सामाजिक स्थिति शिक्षा, विवाह, कुल परम्परा** इत्यादि का स्वरूप भी बदलता जा रहा है। मनुष्य का **रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान तत्कालीन पर्यावरण, मौसम एवं भौगोलिक स्थिति** के आधार थे। एवमेव **व्यापार, यातायात** का स्वरूप भी आवश्यकतानुसार काल सापेक्ष में परिवर्तित होता आया है। वर्तमान **राजव्यवस्था** की प्रक्रिया भी पुरातन काल से भिन्नता रखती है। यह भी समयानुसार परिष्कृत एवं परिवर्तनशीला है।

5.7 शब्दावली

प्रकृत	–	स्वाभाविक, प्रस्तुत, प्रकरणगत।
सोदका	–	जल से युक्त अथवा जल के साथ।
अनुदका	–	जल रहित।
घर्मरक्षणार्थ	–	गर्मी से रक्षा के निमित्त।
एतद्रूप	–	इस प्रकार का रूप।
क्रीत	–	खरीदा/क्रय किया हुआ।
अनन्तर	–	बाद में, पश्चात्।
संकटापन्न	–	संकट से युक्त/विपत्तिग्रस्त

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. ऋग्वेद, सम्पादक – श्रीपाद दामोदर सातवलेकर।
2. वैदिक साहित्य और संस्कृति, बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन, वाराणसी।
3. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, प्रथम खण्ड – वेद, सम्पा. प्रो. ब्रजबिहारी चौबे, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।
4. पाणिनिकालीन भारतवर्ष, लेखक – वासुदेवशरण अग्रवाल।
5. महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर।

5.9 अभ्यास प्रश्न

1. वैदिक काल के पर्वतों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. वैदिक युग की नदियों के परिप्रेक्ष्य में विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
3. वैदिककालीन नारी की स्थिति पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
4. वैदिककालीन वेशभूषा पर प्रकाश डालिए।
5. वेदकाल में कृषि पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
6. वैदिक युग में प्रचलित उद्योगों पर टिप्पणी लिखिए।